(श्रीसमयसार) गाथा १३, दूसरा पैराग्राफ है न। **स्थूल (बाह्य) दृष्टि से देखा जाये....** पैराग्राफ आया न! सूक्ष्म विषय भगवान! अनन्त काल में नव तत्त्व की परिपाटी का भेद है, उसे छोड़कर ज्ञायकभाव अकेला चैतन्यमूर्ति है — ऐसा कभी आश्रय नहीं किया, कभी दृष्टि नहीं की; तो कहते हैं कि **स्थूल दृष्टि से देखा जाये तो — जीव-पुद्गल की अनादि बन्धपर्याय के समीप....** भगवान आत्मा और राग का सम्बन्ध-

बन्धपर्याय के समीप जाकर **एकरूप से अनुभव करने पर....** राग और आत्मा, भेद और आत्मा, जीव की एक समय की पर्याय, जो अजीव का ज्ञान होता है वह, उसको यहाँ अजीव कहते हैं। अजीव भाव तो आत्मा में होता ही नहीं और पुण्य-पाप का भाव जो दो मलिनभाव है, उस बन्ध की पर्याय के समीप जाने से दिखते हैं, आहाहा! नवतत्त्व के भेद (दिखते हैं)। सूक्ष्म बात है प्रभु! इस जीव-पुद्गल के समीप जाकर **अनुभव करने पर यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं,....** पर्याय में नौ प्रकार हैं। सूक्ष्म बात है बापू! पर्याय में नौ प्रकार हैं, वे भूतार्थ हैं, व्यवहारनय से हैं।

श्रोता : पहले तो अभूतार्थ कहते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे यहाँ हैं, इस अपेक्षा से भूतार्थ कहते थे। उस त्रिकाल की अपेक्षा से अभूतार्थ हैं, यह अभी कहेंगे। आहाहा! बहुत सूक्ष्म विषय! अनन्त काल में कभी... ज्ञायक क्या चीज है? अन्दर परमात्मा स्वरूप है। हरी कहो, विष्णु कहो, ब्रह्मा कहो, ब्रह्मानन्द कहो, परमात्मा कहो, वह सब आत्मा अन्दर है। **'हरति इति हरि'** जो अज्ञान और राग-द्वेष को हरे, वह हरि परमात्मा अपना स्वरूप है हरि। समझ में आया? ऐसे एकरूप परमात्मा में कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में देखने से नवतत्त्व पर्यायरूप हैं, भूतार्थ हैं — ऐसा कहा गया है। समझ में आया? आहाहा!

क्या बात! है न? **और एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर....** आहाहा! अब रात्रि को कोई पूछते थे कि हमें कैसे जानना? भाई! यह जीव स्वभाव ज्ञायकरूप शाश्वत् चीज है, उसके सन्मुख जाने से... आहाहा! ज्ञायकभाव शाश्वत् स्वभाव एकरूप भाव; जो भाव, पुण्य-पाप में तो आया नहीं परन्तु वह संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय में भी वह ज्ञायकभाव आया नहीं। आहाहा! जैनधर्म बहुत सूक्ष्म और यही धर्म है, अन्य कोई धर्म है नहीं। समझ में आया?

इस ज्ञायकभाव के समीप जाने से, **एक जीवद्रव्य के स्वभाव....**एक जीवद्रव्य का स्वभाव — एकरूप त्रिकाल ज्ञायकभाव, आनन्दभाव, शान्तभाव, ध्रुवभाव.... जो नौ तत्त्व की पर्याय के समीप जाने से नौ तत्त्व हैं परन्तु उसकी दृष्टि छोड़कर नौ की पर्यायभेद का लक्ष्य छोड़कर, ज्ञायक परम त्रिकाली प्रभु है, उसके सन्मुख जाकर, दृष्टि वहाँ

लगाकर... आहाहा! **भूतार्थनय से एक जीव ही प्रकाशमान है।** आहाहा! वहाँ तो नव तत्त्व में-पर्यायभेद में एक जीव ज्ञायकभाव त्रिकाल ही प्रकाशमान है। आहाहा! क्या कहते हैं अभी? समझ में आया?

पर्याय में — वर्तमान दशा में कर्म के निमित्त के सम्बन्ध की दृष्टि से देखो तो नव पर्याय है, पर्याय में नौ प्रकार हैं। इस जीव में नौ प्रकार में जो जीव गिनने में आया, वह जीव का एक अंश / पर्याय लेना (समझना); सम्पूर्ण जीवद्रव्य नहीं। समझ में आया? एक जीव की एक समय की पर्याय को यहाँ जीव नौ (तत्त्व) में-कहने में आया और भेद सब — आस्रव, पुण्य-पाप, संवर-निर्जरा, बन्ध (और) मोक्ष — यह सब भेदरूप पर्याय है। पर्यायदृष्टि से वह वस्तु है, परन्तु उस दृष्टि से आत्मज्ञान नहीं होता, सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी (नहीं होता)। इस नवतत्त्व के भेद की दृष्टि से सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यक् अर्थात् सत्यदर्शन; वह तो त्रिकाली ज्ञायकभाव जो ध्रुव है, जिसमें भेद नहीं और भेद में वह आया नहीं... आहाहा! ऐसी बात! यह मोक्ष की पर्याय है, उसमें भी द्रव्य आया नहीं। आहाहा! संवर-निर्जरा आदि जो मोक्ष के मार्ग की पर्याय है, उसमें भी वह ज्ञायकभाव आया नहीं। आहा...हा...! ऐसा। है? **नव तत्त्वों में भूतार्थनय से....** नौ की पर्याय में लक्ष्य छोड़कर एकरूप त्रिकाली ज्ञायकभाव की दृष्टि करने से **एक जीव ही प्रकाशमान है।** वहाँ तो चैतन्यमूर्ति भगवान एक ही प्रकाशमान है, वह दृष्टि / सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! ऐसी बातें, बापू! समाज को साधारण बात में अटककर जिन्दगी निकालते हैं। आहाहा! यहाँ परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं, वही सन्त कहते हैं। सन्त आडतिया होकर (केवली का) माल कहते हैं। आडतिया समझते हैं? माल तो सर्वज्ञ के घर का है, सन्त आडतिया होकर यह बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया? कि **नव तत्त्वों में....** नौ की पर्याय के भेद में से **भूतार्थनय से एक जीव ही....** आहाहा! विद्यमान, विद्यमान चीज, विद्यमान मौजूदगी, त्रिकाली शाश्वत् वस्तु जिसमें पर्यायभेद भी नहीं, आहाहा! ऐसा। **भूतार्थनय से....** भूत अर्थात् विद्यमान पदार्थ पूर्णानन्द प्रभु, इसके नय से — इस दृष्टि से देखने से **एक जीव ही प्रकाशमान है।** भाई! यह तो मन्त्र है, यह कोई वार्ता-कथा नहीं, यह कोई शब्दों-एक शब्द में पूरा पड़े — ऐसी चीज नहीं है। आहाहा!

यह तो सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि में आया हुआ मार्ग है। जो इन्द्र एकावतारी, एक भवतारी भी सुनते हैं, वह चीज कैसी है! भैया! आहा! आहा! यह नवतत्त्व की पर्याय की अवस्था का भेद, है भेद, परन्तु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। धर्म की पहली श्रेणी (नहीं होती) इस नौ की पर्यायभेद से सम्यग्दर्शन नहीं होता, क्योंकि सम्यक् पूर्णस्वरूप जो भगवान सत् है, वह सत् है, उसकी दृष्टि से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यक् अर्थात् सत्यदृष्टि, आहाहा! उस त्रिकाली ज्ञायकभाव के समीप जाने से जीव के एकरूप द्रव्यस्वभाव के समीप जाने से एक जीव ही प्रकाशमान दिखता है, बस! उसमें भेद नहीं है। संवर, निर्जरा, और मोक्ष की पर्याय भी ऐसे जीवद्रव्यस्वभाव में नहीं है। आहाहा!

इसी प्रकार अन्तर्दृष्टि से देखा जाये.... पहले वह बाह्यदृष्टि की बात की। अब अन्तर्दृष्टि से देखा जाये — अन्तर्दृष्टि से भगवान आत्मा को देखा जाये तो ज्ञायकभाव जीव है, वस्तु जानन... जानन... जानन... स्वभाव, ज्ञानस्वभाव का पिण्ड (है)। जैसे, यह बर्फ की शिला होती है, पचास मण की; वैसे भगवान अनन्त गुण की शिला एकरूप स्वभाव अन्दर है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें हैं। जीव के... ज्ञायकभाव जीव है। भगवान जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... ध्रुव... यह पानी का प्रवाह ऐसे चलता है और आत्मा का ध्रुव प्रवाह ध्रुव.... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ऐसे चलता है। आहाहा! ऐसा ज्ञायकभाव जीव है। यह त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... वह जीव है। आहाहा! **और जीव के विकार का हेतु....** विकार का अर्थ भेद का हेतु... यहाँ संवर, निर्जरा, मोक्ष को भी विकार कहते हैं। भेद आया न भेद? विशेष कार्य। यह विकार अर्थात् मलिनता — ऐसा यहाँ नहीं लेना। आहाहा!

जीव के विशेष कार्य का हेतु, भेद पड़ते हैं वह निमित्तकर्म का — अजीव का निमित्त से उसकी अस्ति में पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध के भेद दिखते हैं और उसके अभाव में संवर, निर्जरा भी उसमें भी निमित्त के अभाव की अपेक्षा आयी। क्या कहा? जो भगवान ज्ञायकभावरूप एक है, उसमें जो पर्याय में पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध, विकारी पर्याय होती है, उसमें अजीव-कर्म का निमित्त सापेक्ष है; और संवर, निर्जरा, मोक्ष है, वह निमित्त के अभाव की सापेक्षता है। इसमें परमपारिणामिक भाव नहीं आया, उसमें सापेक्षता आयी। आहाहा!

जीव के विशेष कार्य का हेतु — विशेष / पर्याय भेद का हेतु **अजीव** है। आहाहा! भाई! यह तो भगवान परमात्मा सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ की वाणी है। बापू! यह कोई साधारण बात नहीं है। आहाहा! जिसे इन्द्र, सौ इन्द्र, बाघ और सिंह, जंगल में से कुत्ते के बच्चे की तरह चले आयें भगवान के समवसरण में। महाविदेह में भगवान (सीमन्धरनाथ) हैं, यहाँ थे तो यहाँ भी थे। भगवान विराजते हैं, पाँच सौ धनुष का देह है, पूर्व दिशा है न! आहाहा! महाविदेह में, पहले में... बत्तीस भाग हैं, उसमें एक भाग में भगवान विराजमान हैं। आहाहा! पाँच सौ धनुष, का शरीर-देह है, दो हजार हाथ ऊँचा है। अभी प्रभु मनुष्यरूप में विराजते हैं। अन्दर में तो त्रिकाली ज्ञान सर्वज्ञ प्रभु एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक को देखते हैं। उसकी वाणी में यह आया, उसे सन्त जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। समझ में आया? आहा!

जीव तो ज्ञायकभाव ही है। यह त्रिकाली द्रव्य की बात आयी। उन नवतत्त्व में जीव, वह तो एक समय की पर्याय को जीव कहा। समझ में आया? आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव शाश्वत् ध्रुव चीज अनादि-अनन्त अन-उत्पन्न, अ-नाश; नाश नहीं और अपने पूर्ण स्वभाव से भरा पड़ा भगवान, वह **ज्ञायकभाव जीव** है और उसमें विशेष कार्य का हेतु — पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, और मोक्ष, यह विशेष कार्य है, उसमें हेतु अजीव है; तो अजीव हेतु क्यों कहा? कि पुण्य-शुभ—अशुभभाव में आस्रव, बन्ध है उसमें तो अजीव के निमित्त की सापेक्षता आ जाती है परन्तु बाद में संवर-निर्जरा, मोक्ष में भी निमित्त के अभाव की अपेक्षा आती है, ऐसी चीज पर्याय कही जाती है। **उस विकार का हेतु अजीव...** विशेष कार्य में हेतु अर्थात् निमित्त अजीव है, तो संवर-निर्जरा-मोक्ष की पर्याय में हेतु अजीव कैसे? भगवान जो आत्मा त्रिकाली स्वरूप परमपारिणामिक ज्ञायकभाव है, उसमें किसी निमित्त की अस्ति या अभाव की अपेक्षा नहीं है — ऐसी ज्ञायकभाव त्रिकाल वस्तु है, उसके समीप जाने से सम्यग्दर्शन होता है, उससे दूर-दूर भटकते हैं, और नौ पर्याय में उसका लक्ष्य और वहाँ रहता है तो ज्ञायकभाव उसकी दृष्टि में नहीं आता। उसका परिपूर्ण स्वरूप भगवान आत्मा, वह उसकी दृष्टि में ज्ञान में नहीं आता। आहाहा!

श्रोता : सम्यग्दर्शन का विषय अधूरा है, त्रिकाली वस्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाली वस्तु, वह सम्यग्दर्शन का विषय है।

श्रोता : तो अधूरा रहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधूरा किसने कहा? त्रिकाली वस्तु है न? पर्याय के पीछे।

श्रोता : प्रमाण की अपेक्षा से भेद है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह यहाँ तो नय के विषय की बात चलती है न! प्रमाण का विषय तो त्रिकाली ज्ञायकभाव और वर्तमान रागादि पर्याय, संवर आदि — यह सब व्यवहारनय का (विषय है)। निश्चय और व्यवहार दोनों का विषय प्रमाण (है)।

इस प्रमाण के विषय में तो द्रव्य-पर्याय दो आया परन्तु उसमें से जहाँ निश्चयनय की दृष्टि से — एक नय से देखना है.... आहाहा! समझ में आया? तो ज्ञायकभाव जीव है और जीव के विशेष कार्य का हेतु अजीव है। कौन? **पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष जिनके लक्षण हैं — ऐसे केवल जीव के विकार हैं....** केवल जीव की विशेष दशा है। है? शुभभाव, जीव की विकृत अवस्था; पापभाव, जीव की विकृत अवस्था; आस्रव विकृत अवस्था; संवर अविकृत अवस्था.... परन्तु ये विशेष है न? सामान्य ज्ञायकभाव नहीं। आहाहा! ऐसी बात अब... इसे एक-एक गाथा में....

श्रोता : कभी आप कहते हो आत्मा ध्रुव है, कभी आप कहते हो पर्याय, हमारे समझना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : विशेष स्पष्ट कराते हैं। पर्याय भी है और द्रव्य भी है, दो है। द्रव्य है वह ज्ञायकरूप एकरूप है और पर्याय है वह भेदरूप दशावन्त है। पुण्य-पाप आस्रव, संवर, निर्जरा आदि ये भेदरूप हैं। हैं तो ये भी और वह भी है परन्तु नवतत्त्व का भेद — विशेष है, वह तो व्यवहारनय का विषय है। वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। आहाहा! वह शुद्धनय का विषय नहीं है। विषय शब्द से (आशय) ध्येय; शुद्धनय का ध्येय तो त्रिकाली ज्ञायकभाव है। आहाहा! सूक्ष्म बात बापू! इसने कभी (निर्णय) किया नहीं। दुनिया की होली सुलगायी, पूरे दिन राग-द्वेष। आहाहा!

श्रोता : होली अर्थात्।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग की अग्नि सुलगायी। कल कहा नहीं था? कहा था न, राग दाह दहै.... छहढाला में आता है न? पाठशाला में पढ़ाते हैं, छहढाला... उसमें आता है — 'राग दाह दहै सदा, राग आग दाह दहै सदा....' यह राग के विकल्प से अग्नि सुलगती है, अन्दर जलते हैं, अशान्ति से जलते हैं, अनादि से प्राणी (जलते हैं)। समझ में आया? चाहे तो वह स्वर्ग में हो या चाहे तो इस सेठाई में अरबोंपति में हो, वह राग की अग्नि में जलते हैं, जलते हैं वे। आहाहा!

श्रोता : मजा करते हैं, और आप कहते हो जलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन मजा करे? मूर्ख है मजा मानता है तो। सन्निपात होता है न सन्निपात....

श्रोता : यह तो चतुर की बात है आप तो पागल की बात करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वात, पित्त और कफ जब विशेष बिगड़ जाते हैं; वात-पित्त-कफ विशेष बिगड़ जाते हैं-विशेष होता है, तब सन्निपात होता है। सन्निपात में दाँत निकालता है, सुखी है? वैसे ही एकरूप भगवान आत्मा की श्रद्धा बिना, राग और पर्याय की श्रद्धावाला, (उसकी) मिथ्या-श्रद्धा है, ज्ञान मिथ्या है और राग का आचरण — मिथ्या आचरण है, उसे तीनों का सन्निपात लगा है। वह मजा मानता है, वह सन्निपातवाले की तरह हर्ष करता है, वैसे ही यह मजा (मानकर) सन्निपाती, पागल है यह। आहाहा! ऐसा भगवान कहते हैं, हाँ! आहाहा!

श्रोता : सोनगढ़ का सिद्धान्त निकला।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ का? यह भगवान केवली कहते हैं, यह कौन कहते हैं? सन्त, दिगम्बर सन्त, आनन्द की क्रीड़ा में रमनेवाले... आहा! निर्विकल्प आनन्द की मौज में अन्दर रमनेवाले, निज वैभव-अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शान्ति — ऐसे निज वैभव में रमनेवाले सन्त, उसको सन्त-मुनि कहते हैं। वे सन्त यहाँ कहते हैं। आहाहा! यह उनकी संस्कृत टीका है। यह भगवान आत्मा एकरूप जो ज्ञायकभाव है, वह तो उसका स्वभाव है और वही दृष्टि का विषय है। उस ज्ञायकभाव

के समीप जाने से सम्यग्दर्शन होता है। नव के भेद के समीप जाने से सम्यग्दर्शन का अभाव होता है। आहाहा!

यह पुण्य और पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष जिनके लक्षण हैं — ऐसे केवल जीव की पर्याय / **विकार,** जीव का विशेष भाव है। विकार अर्थात् जीव का विशेष भाव है। सामान्य भाव तो ज्ञायक एकरूप त्रिकाल है। समझ में आया? और यह पुण्य-शुभभाव, पापभाव, आस्त्रवभाव दो, दो मिलकर; संवर, निर्जरा, मोक्ष, यह सब जीव की पर्याय, है? केवल जीव की विशेष दशा है। विशेष, विकार, अर्थात् विकार, विकृत अवस्था विशेष अवस्था है। आहाहा! चाहे तो संवर, निर्जरा और मोक्ष भी विशेष अवस्था है, यह ज्ञायकभाव त्रिकाल वह उसमें नहीं आया। आहाहा!

सम्यग्दर्शन में ज्ञायकभाव का भान होता है, प्रतीति आती है परन्तु उस प्रतीति में — पर्याय में ज्ञायकभाव नहीं आता। आहाहा! क्यों? क्योंकि यह द्रव्य है, वह पर्याय में कहाँ से आयेगा? द्रव्य की सामर्थ्य जितनी है, इतनी प्रतीति में सामर्थ्य आती है परन्तु वह द्रव्य - चीज है, वह पर्याय में आ जाये — ऐसा कभी नहीं होता। आहाहा! अरे...! किसने सुना है? जय भगवान (करके) ऐसी की ऐसी जिन्दगी निकाली आहाहा! वह केवल जीव की विशेष दशा है, नौ। एक समय की पर्याय भी विशेष दशा है — ऐसा लिया न, भाई? नौ में जीव की एक पर्याय है, उसे जीव कहा है। द्रव्य-जीव जो है, वह उसमें नहीं आया। समझ में आया? नौ कहे न? नौ, वे केवल जीव के विशेष हैं। आहाहा! समझ में आया? विशेष अर्थात् दशा है, उसकी पर्याय है, उसमें भेद है। वस्तु ज्ञायक है, वह उसमें नहीं आया। आहा! तो यह विकार का — यह प्रकार जीव की पर्याय में नौ प्रकार है, विशेष। एक बात।

पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष - ये विकार हेतु... निमित्त; केवल अजीव हैं।... उसमें जो निमित्त है, वह केवल अजीव है। भेद, जो अपनी पर्याय में है, वह जीव की पर्याय है। आहाहा! यह एक गाथा भी समझना कठिन है। एक व्यक्ति कहता है मैंने पूरा समयसार पन्द्रह दिन में पढ़ लिया। यह तुम समयसार की बहुत महिमा करते हो (कि) समयसार ऐसी चीज है — वैसी चीज है तो पन्द्रह दिन

में पढ़ लिया। अरे! पढ़ा उसमें क्या भला हुआ? उसका भाव क्या है, यह समझे बिना तूने पढ़ा, अंग्रेजी अक्षर लिखे हैं, वह पुस्तक ए, बी, सी, डी... ए, बी, ऐसे अक्षर पढ़े और पढ़ गये तो उसमें भाव आया विशेष? डाह्याभाई! आहाहा! ऐसे अक्षर पढ़ गये परन्तु उसमें भाव क्या है? यह क्या आया तेरे? आहाहा!

श्रोता : आप कहते हैं, ज्ञायकभाव जीव है और नवतत्त्व जीव के विशेष हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किस प्रकार भाषा में? भाषा में आ गया? आहाहा! यहाँ तो भाव में आना चाहिए — ऐसा कहते हैं। आहाहा!

श्रोता : एक शर्त खत्म हुई तो दूसरी शर्त आयी, कितनी शर्त लाते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो एक की एक शर्त है। त्रिकाली सामान्य ज्ञायकभाव ही सम्यग्दर्शन का विषय है, यह एक ही शर्त है परन्तु भिन्न-भिन्न रूप से समझाते हैं। आहाहा! जिसको जन्म-मरणरहित होना हो, उसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिए। सम्यग्दर्शन कैसे हो? कि त्रिकाली ज्ञायकभाव के समीप जाने से एकत्वबुद्धि होती है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! तथापि सम्यग्दर्शन की पर्याय में सामान्य जीव है, उसकी प्रतीति आयी परन्तु सामान्य जीव है, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय में जीव नहीं आया। विशेष में सामान्य नहीं आया। आहाहा! यह क्या कहते हैं? ज्ञानचन्दजी! ये नौ हैं, वे अजीव हैं, विशेष हेतु अजीव हैं।

ऐसे यह नव तत्त्व, जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़कर,.... आहाहा! भगवान ज्ञायक स्वभाव त्रिकाल है, उसे छोड़कर **स्वयं और पर जिनके कारण हैं....** अपनी पर्याय में नौ और पर निमित्त — यह स्व और पर जिनके कारण हैं — **ऐसे एक द्रव्य की पर्यायों के रूप में....** यह द्रव्य की पर्याय के भेदरूप में **अनुभव करने पर** नौ हैं, नौ हैं। हैं?

भाई! यह मार्ग तो वीतराग का है भाई! जिनके पास इन्द्र, बाघ और सिंह जंगल में से, केसरी सिंह जंगल में से समवसरण में सुनने को चला आता है। शान्त... शान्त... शान्त...! वन का क्या कहा जाये? वह राजा, सिंह वन का राजा, सैकड़ों सिंह जंगल में से चले आते हैं। भगवान की सभा में, तो वह चीज कैसी होगी, वह वार्ता कैसी होगी? आहाहा!

श्रोता : भगवान की वाणी का कितना प्रभाव है!

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभाव तो.... यह तो उनके पुण्य का उदय... परन्तु सुनने योग्य जीव वे सुनते हैं, उसमें कितनी पात्रता है! आहाहा! समझ में आया? साक्षात् तीन लोक के नाथ, उनकी वाणी वह यह वाणी है। आहाहा!

कहते हैं, **यह नव तत्त्व, जीवद्रव्य के स्वभाव को छोड़कर,....** त्रिकाली ज्ञायकभाव का लक्ष्य छोड़कर, **स्व और पर जिनके कारण....** स्व में वे पहले जीव को अलग किया न, केवल जीव के विकार वह स्व, और पुण्य-पाप आदि अजीव वे पर **ऐसे एक द्रव्य की पर्याय... द्रव्य की पर्यायों के रूप में अनुभव करने पर....** इस वस्तु की वर्तमान दशा का अनुभव करने पर वे नौ हैं। आहाहा! अनुभव शब्द से यहाँ सम्यग्दर्शन नहीं (समझना चाहिए)। नौ का ज्ञान करने पर नौ हैं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। लोग तो बाहर से मानकर बैठ गये हैं, कुछ व्रत लिये और तपस्या उपवास किये और मन्दिर-मन्दिर बनवाये और भक्ति, पूजा, यात्रा करवाये भगवान....

श्रोता : आगम मन्दिर बनावे तो धर्म होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आगम मन्दिर बनाया, कहा न? यह रामजीभाई ने नहीं बनाया, आहाहा! हाँ! तुम तो प्रमुख थे या नहीं? आहाहा! प्रमुख तो यह थे, भले ही उस समय नवनीतभाई थे परन्तु सब नवनीतभाई तो ठीक परन्तु प्रमुख तो पहले से ये एक ही हैं। यह इनने नहीं बनाया, उनसे तो बना ही नहीं। वह तो जड़ की पर्याय उस समय में उत्पन्न होने की योग्यता से बना है। यह मन्दिर की-जड़ की पर्याय है। आहाहा! वह जन्म-क्षण है, प्रवचनसार गाथा १०२। वह जन्म अर्थात् उत्पत्ति का क्षण था, वहाँ उत्पन्न हुआ है। समझ में आया? इन्हें उसे बनाने में विकल्प हो, वह शुभभाव है, बस! पुण्य है। पुण्य वह आत्मा की विशेष दशा — विकार है। आहाहा! ऐसी बात है।

पर्यायदृष्टि से देखो तो नौ हैं, भूतार्थ है परन्तु उसमें सम्यग्दर्शन नहीं आया। धर्म की पहली सीढ़ी उत्पन्न करने में नव तत्त्व के विषय से वह दर्शन उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! पर्याय विशेष है न? आहाहा! **और सर्व काल में अस्खलित....** देखो, अब यह! सर्व काल में विशेष में नहीं आनेवाला... अस्खलित स्खल का उसमें एक अंश में भी कभी नहीं आता, केवलज्ञान की पर्याय में भी ज्ञायकभाव त्रिकाल नहीं आता। आहाहा!

यह जीव निगोद में है तो ज्ञान का अक्षर के अनन्तवें भाग उसको विकास है, तो भी ज्ञायक तो सर्व काल में अस्खलित है — ऐसा है, वहाँ अन्दर पड़ा है। क्या कहा? ज्ञान की पर्याय.... यह निगोद है न निगोद? निगोद क्या? यह लहसुन, प्याज, उसका एक टुकड़ा राई जितना लो तो उसमें असंख्यात तो शरीर हैं, और एक शरीर में अनन्त जीव हैं और एक जीव को वर्तमान में उसकी पर्याय में अक्षर के अनन्तवें भाग का उसका विकास है — ऐसा पर्याय में होने पर भी वस्तु है वह तो त्रिकाल अस्खलित ज्ञायकभाव है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें अब किसे? और केवलज्ञान होता है, परिपूर्ण पर्याय, वह तीन काल-तीन लोक को जाने ऐसी पर्याय आयी तो भी ज्ञायकभाव तो जैसा है — ऐसा का ऐसा है। लिखा है या नहीं देखो? **सर्व काल में अस्खलित....** है? सर्व काल में स्खलित नहीं होता अर्थात् उसमें कुछ हीनाधिकता नहीं होती। आहाहा! अब ऐसा है।

सर्व काल में अस्खलित एक जीवद्रव्य के स्वभाव.... आहाहा! त्रिकाली जीवद्रव्य का वर्तमान स्वभाव। कायम रहनेवाला अस्खलित कायम। सामान्य में से विशेष में स्खलना आ जाती है — ऐसी वह चीज नहीं है। आहाहा! सर्व काल में अस्खलित आहाहा! नरक में नारकीरूप से अनन्त-अनन्त दुःख पर्याय में वेदन किया परन्तु वस्तु तो सर्व काल में अस्खलित ज्ञायकभाव तो वहाँ भी ऐसा का ऐसा है। आहाहा! और सर्वार्थसिद्धि में गया और वहाँ सुख की सामग्री का पार नहीं और तैतींस हजार वर्ष में तो आहार की डकार कण्ठ में से आती है। उस प्राणी की पर्याय में भी द्रव्य तो जैसा है, वैसा का वैसा अन्दर पड़ा है। **सर्व काल अस्खलित...** यह सर्व काल अस्खलित की व्याख्या होती है। आहाहा! समझ में आया? केवलज्ञान की पर्याय हो परन्तु वस्तु है, वह तो तीन काल, तीनों ही काल अस्खलित है, वह पर्याय में नहीं आती — इसका अर्थ ऐसा है।

श्रोता : पर्याय में नहीं आता, उसका नाम अस्खलित?

पूज्य गुरुदेवश्री : अस्खलित। आहाहा! देखो! क्या कहते हैं देखो? **सर्व काल में....** यह तो मन्त्र है प्रभु! जैसे बिच्छू उतारने का मन्त्र होता है न, बिच्छू का डंक, ऐसे सर्प का डंक, वैसे ही यह मिथ्यात्व का जहर उतारने का मन्त्र है। आहाहा! अनादि राग और

पुण्य का परिणाम मेरा, उससे मुझे लाभ है, (यह) उसको मिथ्यात्व का जहर लगा है। यह जहर उतारने का यह मन्त्र-दशा है। आहाहा!

सर्व काल में... आहाहा! त्रिकाली स्वभाववन्त परमात्मा सर्व काल में अस्खलित एकरूप है। आहाहा! अनादि काल से यह जगत है, तो अनादि काल से केवलज्ञानी भी है। जगत में केवलज्ञानी भी अनादि काल से है। यह जगत था और केवलज्ञानी परमात्मा नहीं थे — ऐसा नहीं है परन्तु यह जगत है; इसलिए केवलज्ञान हुआ — ऐसा नहीं और केवलज्ञान हुआ तो आत्मा सामान्य में से हटकर स्खलित हो गया... इतनी केवलज्ञानदशा अनन्त आनन्द दशा प्रगट हुई तो त्रिकाली स्वभाव में कोई कमी हो गयी (— ऐसा नहीं है।) आहाहा! समझ में आया? '**सर्व काल में अस्खलित**' शब्द का बड़ा गम्भीर अर्थ है। आहाहा! अरेरे! इसने कुछ सुना नहीं न? आहा!

सातवें नरक के नारकी का दुःख.... प्रभु! कहा था न कल? एक क्षण का दुःख... परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि करोड़ों भव और करोड़ों जीभ से नहीं कहा जा सकता, इतना (एक) क्षण का दुःख। ऐसे तैंतीस सागर तक अनन्त बार हुआ है परन्तु वस्तु है, वह तो अस्खलित ज्ञायकभाव — ऐसा का ऐसा पड़ा है। आहाहा! आनन्द से परिपूर्ण है, वह ऐसी दुःखदशा के काल में भी आनन्द से परिपूर्ण ज्ञानानन्द भगवान अन्दर पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आये, उतना समझना बापू! यह तो भगवान का मार्ग, भाई!

अरे! परमात्मा का विरह पड़ा, वीतराग रहे नहीं... जैसे लक्ष्मी जाती है और माता-पिता मर जाते हैं, फिर बाद में लड़के विवाद करते हैं। आहाहा! बँटवारे के लिये (विवाद करते हैं) यह मकान मेरा, मैं बड़ा भाई हूँ मैं इसमें रहता हूँ, पिताजी रहते थे, दस लाख का मकान है परन्तु यह मुझे लेना है — यह विवाद पड़ता है। लक्ष्मी घटे, माँ-बाप स्वर्गस्थ हो जायें... वैसे ही केवलज्ञान की लक्ष्मी गयी, त्रिलोक के नाथ परमात्मा पिताजी रहे नहीं। आहाहा! बाद में यह विवाद खड़ा किया.... कोई कहता है कि नहीं, पुण्य से धर्म होता है, कोई कहता है — देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा से धर्म होता है... कोई कहता है — मन्दिर को बनाने से धर्म होता है! ऐसा विवाद भगवान के विरह में बहुत पड़ा है। युगलजी! आहाहा!

ऐसा हो भले ही, चाहे सो विपरीत दृष्टि (करे) परन्तु वस्तु जो अन्दर है, वह

तो अस्खलित त्रिकाल अन्दर पड़ी है। आहाहा! भाई! भाषा सरल दिखती है परन्तु वह भाव समझना... आहाहा! **सर्व काल में अस्खलित एक जीवद्रव्य के स्वभाव....** देखो! त्रिकाल कायम रहनेवाली चीज, एकरूप — ऐसा एक जीवद्रव्य.... देखो! एक जीवद्रव्य, एक अपने जीवद्रव्य के स्वभाव **के समीप जाकर....** आहाहा! नौ तत्त्व के भेद में जब दूर होता है समीप से, (जब) नौ पर्याय के समीप जाते थे परन्तु द्रव्य से दूर होता था। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि भगवान एकरूप द्रव्यस्वभाव सर्व काल में स्खलना अर्थात् विशेषरूप, वह कुछ नहीं होता और विशेष दशा पूर्ण हो तो भी वहाँ कुछ स्खलना नहीं होती और विशेष दशा बहुत अल्प होती है, तो भी वहाँ स्खलना नहीं होती। आहाहा! ऐसे **सर्व काल में अस्खलित एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप....** यह अन्तर में दृष्टि कर प्रभु! आहाहा! पर्याय के भेद की दृष्टि छोड़ दे। आहा! तेरा जीव-द्रव्यस्वभाव जानना हो तो... आहाहा! और तुझे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो तो — धर्म की पहली दशा प्रगट करना हो तो त्रिकाल अस्खलित जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जा। पर्याय से दूर हो जा, आहाहा! ऐसा मार्ग है।

एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर — ऐसा क्यों कहा? कि कर्म हटे तो समीप जाकर — ऐसा नहीं। तुम तुम्हारे पुरुषार्थ से त्रिकाली स्वभाव के समीप जा सकते हो। समझ में आया? और अपने उल्टे पुरुषार्थ से ही तुम पर्यायबुद्धि में रुक गये हो। आहाहा! किसी कर्म के कारण रुक गया है और कर्म हट जाये तो सम्यग्दर्शन होता है और (स्वभाव के) समीप जाता है — ऐसा नहीं है। आहाहा!

श्रोता : हमारी तरफ तो ऐसा कहते हैं कि कर्म से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब झूठ है, यह तो पहले से है, देवचन्दजी! यह तो (संवत्) ७१ के साल से हमारे चलती है, ६३ वर्ष हुए। ६३; ६० और ३ वर्ष (हुए)। पहले हमारे गुरु थे, बहुत प्रसिद्ध थे, थे स्थानकवासी परन्तु दृष्टि विपरीत थी, परन्तु हमें ७१ में, ७० में दीक्षा ली, ७० कहते हैं तुम्हारे में सत्तर कहते हैं न। सात और शून्य, १९७०, ६५ वर्ष हुए। पहले हमने निकाला — हमें तो पूर्व का संस्कार था न? तो गुरु ने कहा नहीं,

शास्त्र में पढ़ते थे तो उसमें से निकाला, पहले-पहले बाहर बोले थे कि 'विकार अपने में होता है, वह कर्म से बिल्कुल नहीं।' खलबलाहट हो गयी, दोपहर को व्याख्यान करते थे, सबेरे हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे न, वे करते थे और आठमपाखी का प्रोषध करते हैं न प्रोषध? प्रोषध नहीं? चौबीस घण्टे खाना नहीं और एक जगह रहना तो, लाठी, लाठी, दामनगर के पास है तो वहाँ प्रोषध, २५-३०-४० लोग होते थे और दोपहर को लोग कहते कानजीस्वामी पढ़ें, कानजीस्वामी पढ़ें - ऐसे लोग बहुत माँग करते थे तो हम दोपहर को एक घण्टे पढ़ते थे। आठम और पाखी, महीने में चार बार, हर रोज नहीं। जब प्रोषध हो, सबेरे में व्याख्यान हो गया हो, दोपहर को माँग करे कि महाराज कानजी मुनि पढ़ें ऐसा। अतः एक बार पढ़ते न, एक बार तो पहले यह कहा। गुरु बैठे थे, पीछे सुनते थे, सुनते थे कि आत्मा में जो मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव होता है, वह कर्म के निमित्त से होता है — ऐसा बिल्कुल झूठ है। अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार होता है और सुल्टे पुरुषार्थ से विकार का नाश होता है।

यह बात निकाली तो पीछे स्थानकवासी में गड़बड़ हो गयी, पीछे श्वेताम्बर में बात गयी और वहाँ गड़बड़ हो गयी और इस दिगम्बर में आये तो यहाँ भी गड़बड़ हो गयी। यहाँ भी ऐसा कहते हैं नहीं, विकार ऐसे नहीं होता, विकार कर्म से होता है। यह वर्णीजी के साथ चर्चा हुई थी न? ५१ वर्ष पहले (संवत्) १३ की साल, २१ वर्ष हुए, सब थे — रामजीभाई थे, हमारे हिम्मतभाई थे, फूलचन्दजी थे, कैलाशचन्दजी थे, बंशीधरजी थे — वे इन्दौर के बड़े पण्डित थे, सब थे। तो कहा — देखो! ६२ गाथा पंचास्तिकाय शास्त्र देखो। अपने में षट्कारक से विकार, अपनी पर्याय में अपने कारण से होता है। 'षट्कारक' क्या? जो कोई राग-द्वेष और मिथ्यात्व होता है, उस पर्याय का कर्ता पर्याय है। उस मिथ्यात्व की पर्याय का कर्ता पर्याय है। मिथ्यात्व उसका कार्य है, मिथ्यात्व उसका साधन है, मिथ्यात्व उसका अपादान है, उससे — मिथ्यात्व में से मिथ्यात्व आता है और मिथ्यात्व का आधार वह मिथ्यात्व है, द्रव्य-गुण नहीं और पर नहीं। (विकार) पर के कारण से निरपेक्ष होता है — ऐसा कहा न (तो) वहाँ ईशरी में खलबलाहट हो गयी। एक फूलचन्दजी, यह पण्डित हैं न वे मध्यस्थ हैं, उनका मस्तिष्क बहुत अच्छा है, तो वे बोले, सब सभा बैठी थी — कि स्वामीजी ऐसा कहते हैं कि विकार पर के कारक की अपेक्षा

बिना निश्चय से अपने में अपने से होता है। यह फूलचन्दजी ने कहा। ऐसा कहते हैं, मध्यस्थ व्यक्ति है। तो यह बात जरा रुचि नहीं कितनो ही को।

कहा अपनी पर्याय में.... उस समय तो हमने प्रवचनसार देखा नहीं था, पहले कहा न, उस समय देखा था परन्तु जब पहले कहा था तब प्रवचनसार, समयसार देखा ही नहीं था। अन्दर से बात आ गयी। भगवान आत्मा अपनी पर्याय में विकृत राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव करता है, उस समय का अपराध अपने से होता है, कर्म से बिल्कुल नहीं, यहाँ कर्म को अपराध छूता नहीं और अपराध कर्म को छूता नहीं, कर्म अपराध को छूता नहीं। सभा में खलबलाहट हो गयी, सभा को बात नहीं जँची। वह बात बाद में कलकत्ता आ गयी। एक सेठ था सेठ, साहूजी थे न, वहाँ यह बात लाये। हम हमारा भोजन गजराजजी के यहाँ था। गजराजजी नहीं ? वे छोटे-बड़े क्या नाम ? तोलाराम और वहाँ यह वछराजजी दूसरे और तीसरे गजराजजी.... तो गजराजजी के यहाँ भोजन था वहाँ, पत्र वहाँ से आया कि पूछो, विकार कर्म से होता है या नहीं ? उसे लेकर साहूजी आये। (उन्होंने कहा) सम्मेदशिखर से पत्र आया है ? कहा, वहाँ जबाव दे दिया है उठो। साहूजी हो या चाहे जो हो, हमारे क्या यहाँ ? साहूजी लेकर आये, शान्ति साहूजी। (हमने कहा) वहाँ जबाव दे दिया है, विकार अपने से होता है, पर से नहीं यह शास्त्र-पाठ बताया, वहाँ बताया ६२ गाथा पंचास्तिकाय। देखो, यहाँ अभी है कि विकार करने में पर के कारक की अपेक्षा नहीं है, पर के कारक और कारण की अपेक्षा है ही नहीं — ऐसा पाठ पंचास्तिकाय में है। हमने दो दिन पहले बताया था न, दो दिन पहले बताया था, समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं कि अपने में विकारदशा हो या विशेषदशा हो, वह अपने से होती है, उसमें निमित्त... यह कहा न ? यह जीव की पर्याय नौ है और उसमें निमित्त अजीव है; निमित्त, परन्तु निमित्त से हुआ — ऐसा नहीं है। आहाहा ! निमित्त के लक्ष्य से अन्दर भेद पड़ गया। समझ में आया ? परन्तु वह कोई चीज नहीं है। जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है — धर्म की पहली सीढ़ी प्राप्त करना है, तो उसे तो **सर्व काल अस्खलित एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर ये अभूतार्थ हैं,....** नौ पर्याय

झूठी है। आहाहा! समझ में आया? यह तो बापू! अक्षर-अक्षर का अर्थ है। इसमें तो एक अक्षर फेरफार करे तो? सन्तों की वाणी, दिगम्बर सन्त, आत्मअनुभवी भावलिंगी सन्त, परमेश्वर पद में आये। आहाहा! आचार्य तो परमेश्वर हैं, पंचपरमेष्ठी हैं या नहीं? पंच — ये परमेष्ठी हैं न? आहाहा! आचार्य महाराज की यह वाणी है। मूल गाथा और टीका है, वह आचार्य महाराज की, अमृतचन्द्राचार्य! दिगम्बर! हजार वर्ष पहले हुए। इस गाथा में भाव था वह खोलकर रख दिया। यह आचार्य ऐसा कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य! जबकि अभी ऐसा कहते हैं, अभी आया है न? नया 'समयसार' विद्यानन्दजी का तो उसमें ऐसा लिखा है। पण्डित बलभद्र ने उन्होंने कहा होगा कि शास्त्र तो बड़ा सरल है परन्तु विद्वानों ने टीका बनाकर दुरुह (कठिन) कर दिया है। दुरुह क्या कहते हैं? कठिन ऐसा है। समझ में आया? यहाँ पुस्तक है? नहीं.... समझ में आाय? क्योंकि अमृतचन्द्राचार्य! जहाँ पाठ में अव्यक्त है, वहाँ उसके छह बोल निकालकर स्पष्ट कर दिया है कि आत्मा यह है, पर्याय से व्यक्त है, उससे भिन्न आत्मा है — ऐसा अर्थ लिया ही नहीं, उसमें से, बस एक शब्दार्थ लिया था साधारण, टीका नहीं। अरे भाई! यह आचार्यों की टीका, सन्तों की टीका है, वह कोई वार्ता नहीं। यह तो मूल गाथा में जो भाव था, उसे खोल दिया है। जैसे गाय और भैंस के थन में दूध है न दूध, तो उसमें आँचल में, ऐसा आँचल नहीं लगाते हैं। देखा है? ऐसा नहीं लगाते, ऐसा लगाते हैं। ऐसा लगाते हैं तो यहाँ चाँदा पड़ जाते हैं परन्तु इन्हें — यह हमारे घर में तो बहिन का घर था न तो हमने सब देखा था। दूहते थे तो यह अँगूठा है न यह इसमें खाड है उसमें आँचल रखते हैं आँचल! तो उसमें था वह निकलता है। इसी प्रकार गाथा में भाव है, उसे तर्क से उठाकर यह बनाया है। सेठ! सेठ को तो संस्कृत का और व्याकरण का बहुत अभ्यास है। कारंजा में पढ़े हैं, परन्तु सब बाहर का (अभ्यास है)। आहाहा!

सर्व काल में अस्खलित, विशेष में कभी आता ही नहीं और सामान्य में कभी हीनाधिकता होती ही नहीं। आहाहा! यह क्या कहते हैं? ऐसा एकरूप त्रिकाली भगवान, उसके समीप.... एक जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर ये नौ हैं, वे झूठे हैं; नौ पर्यायें झूठी हैं। एकरूप सत्यार्थ की दृष्टि करने से नौ पर्यायें दृष्टि

में नहीं आती, इस अपेक्षा से झूठी है। आहाहा! अभी तो नौ तत्त्व झूठे तो बाहर की बात तो कहाँ करना? आहाहा!

श्रोता : नौ पर्याय भी झूठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय सब झूठ... एकरूप प्रभु! कायम एकरूप सर्व काल में रहनेवाला भगवान प्रभु, ज्ञायकस्वभाव, द्रव्यस्वभाव, जीवद्रव्यस्वभाव, एकरूपस्वभाव की ओर के पुरुषार्थ से वहाँ जाकर अनुभव करने पर नौ पर्याय का भेद झूठा हो जाता है। आहाहा! तब उसे सम्यग्दर्शन होता है, युगलजी! अभी तो धर्म का चौथा गुणस्थान.... पाँचवाँ और छठवाँ वह तो क्या चीज है! समझ में आया? जिसको श्रावक कहते हैं, वह श्रावक.... यह वाड़ा का (सम्प्रदाय के) श्रावक वे कोई श्रावक नहीं हैं। अभी सम्यग्दर्शन क्या है और कैसे प्राप्त होगा, उसका पता नहीं, कहाँ से श्रावक आया? कहाँ से साधु आ गया? आहाहा! **(एक जीवद्रव्य के स्वभाव के) समीप जाकर अनुभव करने पर नौ अभूतार्थ हैं असत्यार्थ हैं इसलिए....**

विशेष आयेगा। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)